

घरेलू बचत को बढ़ावा जरूरी

भुवन भास्कर



घरेलू बचत दो स्रोतों से आती है। पहला, एक आम आदमी अपनी कमाई का जो हिस्सा बचत के तौर पर बैंकों में रखता है और दूसरा, सरकारी और निजी कंपनियां अपनी बचत का जो हिस्सा नकद के तौर पर बैंकों में रखती हैं। यही पैसा बैंक उद्योगों को कर्ज के तौर पर देते हैं जिससे आर्थिक गतिविधियां तेज होती हैं। भारत में परिवार बचत का सबसे बड़ा स्रोत रहे हैं, उसके बाद निजी क्षेत्र का नंबर आता है और फिर बारी आती है सरकारी क्षेत्र की कंपनियों की लेकिन 2008 की मंदी के बाद इन दोनों ही तरह के स्रोतों पर गहरा आघात लगा है

भा

रतीय अर्थव्यवस्था के इतिहास में 1991 का वर्ष मील का पत्थर माना जाता है। इसी साल तत्कालीन वित्त मंत्री मनमोहन सिंह ने भारतीय अर्थतंत्र में आर्थिक उदारीकरण के अध्याय की शुरुआत की। भारत में उदारीकरण की शुरुआत घोर वित्तीय कुप्रबंधन के चलते पैदा हुई एक बेहद गंभीर आर्थिक दुर्घटना का नतीजा थी (देखें बॉक्स: मजबूरी में हुई उदारीकरण की क्रांति)। यह शोध का विषय हो सकता है कि देश को तत्कालीन आर्थिक भंवर से निकालने के लिए और क्या विकल्प अपनाए जा सकते थे। अगर कोई और वित्त मंत्री होता या फिर स्वयं श्री सिंह को उदारीकरण के अलावा कोई और अन्य राह तलाशनी होती तो क्या रास्ते हो सकते थे।

एक हकीकत यह भी है कि भारत में उदारीकरण की शुरुआत अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) की उन शर्तों के तहत एक मजबूरी थी, जो भारत को दिए गए कर्ज के बदले आयद की गई थी। शायद समाजवादी अर्थशास्त्रियों की किताब में उस मुश्किल हालात से निकलने के लिए कुछ और विकल्प मौजूद हों, लेकिन एक बात तो तय है कि भुगतान संतुलन के उन हालात से देश को निकालने के लिए बहुत बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा की जरूरत थी। ये विदेशी मुद्रा दो तरह से आ सकती थी, या तो घरेलू स्रोतों से प्राप्त रुपये से विदेशी मुद्रा खरीदी जाती या फिर विदेशों से डॉलर लाया जाता। संकट की व्यापकता और समय की कमी को देखते हुए स्वाभाविक तौर पर सरकार ने दूसरा रास्ता चुना और देश के उद्योग-धंधों को विदेशी निवेश के लिए खोलने की शुरुआत की। उस वक्त तक देश में शायद

ही कोई ऐसा सेक्टर या उद्योग था, जहां विदेशी कंपनियों को खुले तौर पर निवेश करने की अनुमति थी, लेकिन सरकार ने आर्थिक उदारीकरण या वैश्वीकरण की शुरुआत कर विदेशी कंपनियों के निवेश को आसान बनाया और यहीं से शुरू हुआ देश में बड़े पैमाने पर विदेशी प्रत्यक्ष निवेश यानी एफडीआई। इसमें कोई शक नहीं है कि उस समय की आर्थिक नीतियों ने देश को आर्थिक आपातकाल से उबारने में अहम भूमिका निभाई और उसी की बुनियाद पर तीन हफ्ते के आयात भर की 60 करोड़ डॉलर विदेशी मुद्रा वाला फॉरेक्स रिजर्व आज 300 अरब डॉलर से ज्यादा का भंडार बन गया है।

यहां एक बात समझना बहुत जरूरी है। देश का फॉरेक्स रिजर्व बढ़ना अपने आप में किसी आर्थिक नीति का लक्ष्य नहीं होता, बल्कि यह तो बस एक बाई प्रोडक्ट है। आर्थिक नीतियों का लक्ष्य होता है देश की अर्थव्यवस्था में तेजी लाना, सकल घरेलू उत्पाद में बढ़ोतरी करना, प्रति व्यक्ति आय में इजाफा करना और देश के नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार करना। लेकिन जब आर्थिक गतिविधियां बढ़ती हैं और देश में आयात के लिए जरूरी विदेशी मुद्रा की तुलना में ज्यादा विदेशी मुद्रा आने लगती है, तो विदेशी मुद्रा भंडार अपने आप बढ़ने लगता है। विदेशी मुद्रा के देश में आने के कई रास्ते हैं। इनमें प्रमुख हैं, एफडीआई, एफआईआई (विदेशी संस्थागत निवेश), विदेशी कर्ज (वर्ल्ड बैंक, आईएमएफ, एडीबी जैसी संस्थाओं या फिर दूसरे देशों से) और प्रवासी भारतीयों द्वारा भेजी जाने वाली रकम (रेमिटेंस) और एक्सपोर्ट। जब इन स्रोतों से विदेशी मुद्रा (मुख्य रूप से

लेखक आर्थिक पत्रकार हैं और सीएनबीसी आवाज, जी बिजनेस, इकनॉमिक टाइम्स के साथ काम कर चुके हैं। संप्रति क्मोडिटी एक्सचेंज एनसीडीईएक्स के साथ कार्यरत हैं और शेयर बाजार, भारतीय अर्थव्यवस्था, कृषि और एग्री क्मोडिटी से जुड़े विषयों पर लिखते रहते हैं। ईमेल: bhaskarbhuwan@gmail.com

डॉलर) देश में आती है, तो यहां के बाजार में इस्तेमाल करने लायक रुपये हासिल करने के लिए उसे बेचा जाता है। आरबीआई और दूसरे बैंक डॉलर लेते हैं और बदले में रुपये देते हैं। अब जो डॉलर बैंकों और आरबीआई के पास जमा होता है, उसे वे रुपये के बदले आयातकों को देते हैं। बचे डॉलर विदेशी मुद्रा भंडार में जमा होते जाते हैं। भारत की आर्थिक नीतियां 1991 के बाद से ही सैद्धांतिक तौर पर ज्यादा से ज्यादा एफडीआई खींचने के लिहाज से तैयार होती रही हैं।

विदेशी निवेश में बढ़ोतरी का सीधा असर देश की आर्थिक वृद्धि दर पर देखा जा सकता है। जीडीपी वृद्धि दर 1991-92 में 1.3 फीसदी थी जो उदारीकरण प्रक्रिया शुरू होने के तीन साल बाद 5.3 फीसदी पर पहुंच गई। सरकारी घाटा 1990-91 में 7.9 फीसदी था जो 4 साल में घटकर 6.7 फीसदी पर आ गया। अगस्त 1991 में 17 फीसदी के स्तर तक पहुंच चुकी महंगाई दर 1992-93 में 7 फीसदी और 1993-94 में 5.6 फीसदी पर पहुंच गई और व्यापार घाटा जो 1990.91 में 9.4 अरब डॉलर तक पहुंच गया था, 1994-95 में गिरकर एक अरब डॉलर तक आ गया। साफ है कि उदारीकरण के कारण आई विदेशी पूंजी का असर अर्थव्यवस्था के अलग-अलग फलकों पर साफ दिखने लगा था। जब सरकार ने भारत के दरवाजे दुनिया के लिए खोलने वाला ऐतिहासिक बजट पेश किया, उस समय विदेशी मुद्रा भंडार एक अरब डॉलर से भी नीचे पहुंच चुका था, जो कि अब करीब 315 अरब डॉलर के स्तर पर है।

इस दौरान अगर देश में एफडीआई पर नजर डालें, तो इसमें करीब 425 गुणा तक का

उछाल देखने को मिलता है। जहां देश में 1990-91 में 409 करोड़ रुपये का विदेशी प्रत्यक्ष निवेश आया, उसके 2011-12 तक 1.73 लाख करोड़ रुपये तक पहुंच जाने का अनुमान है (स्रोत: आरबीआई)। यह स्थिति तब

पिछला साल, विगत दो दशकों के सबसे बुरे वर्षों में शामिल था, जब देश की जीडीपी वृद्धि दर 5 फीसदी से भी नीचे चली गई। हालांकि इस साल इसके वापस 5.5 फीसदी के इर्द-गिर्द रहने की संभावना जताई जा रही है, लेकिन यह बहुत कुछ इस बात पर भी निर्भर करेगा सरकारी नीतियां विदेशी निवेश को कितना आकर्षित कर पाती हैं।

है जब लगातार भारत में मौजूद निवेश बाधाओं की चर्चा होती है। कारोबार करने की सुविधा के लिहाज से दुनिया के 189 देशों में भारत का नंबर 134वां है। इसके बावजूद भारत दुनिया में सबसे ज्यादा एफडीआई आकर्षित करने वाला चीन के बाद दूसरा देश है। यह साबित करता है कि भारत में विदेशी निवेश के लिहाज से कितनी विशाल संभावनाएं हैं। इन्हीं संभावनाओं के लिहाज से प्रधानमंत्री ने भारत को व्यापार सुविधाओं के लिहाज से दुनिया के 50 शीर्ष देशों में शामिल करने का लक्ष्य रखा है। प्रधानमंत्री के “मेक इन इंडिया” अभियान की सफलता भी बहुत हद तक उनके इस लक्ष्य को हासिल करने की क्षमता पर ही निर्भर करेगी।

साल 2008 में लेमैन ब्रदर्स के पतन के बाद जिस तरह पूरी दुनिया के अर्थतंत्र पर मंदी का दीमक लगा, उससे भारत में विदेशी निवेश को भी धक्का लगा। वर्ष 2008-09 में 22.697

अरब डॉलर का विदेशी निवेश हुआ था, जो 2009-10 में लगभग स्थिर 22.461 अरब डॉलर रहा लेकिन उसके अगले साल इसमें जबर्दस्त गिरावट आई और यह करीब 15 अरब डॉलर पर फिसल गया। यह एक बार फिर 2011-12 में 23 अरब डॉलर पर पहुंचा लेकिन उसके अगले साल यानी 2012-13 में इसके वापस 18.25 अरब डॉलर तक सिमटने का अनुमान है। ऐसे में यह चिंता जायज़ है कि देश की आर्थिक रफ्तार वापस दहाई अंकों में कैसे लौटेगी। पिछला साल, विगत दो दशकों के सबसे बुरे वर्षों में शामिल था, जब देश की जीडीपी वृद्धि दर 5 फीसदी से भी नीचे चली गई। हालांकि इस साल इसके वापस 5.5 फीसदी के इर्द-गिर्द रहने की संभावना जताई जा रही है, लेकिन यह बहुत कुछ इस बात पर भी निर्भर करेगा सरकारी नीतियां विदेशी निवेश को कितना आकर्षित कर पाती हैं।

हालांकि पिछले 20 वर्षों के आंकड़े एफडीआई और जीडीपी के बीच किसी सीधे संबंध को पूरी तरह पुष्ट नहीं करते हैं। 1998-99 में एफडीआई पिछले साल के मुकाबले करीब 8 फीसदी कम हुआ, लेकिन इस दौरान जीडीपी में 1997-98 के 4.30 फीसदी के मुकाबले 6.68 फीसदी की बढ़ोतरी हुई। इसी तरह 2000-01 में एफडीआई तो पिछले साल के मुकाबले 22 फीसदी से ज्यादा बढ़ा, लेकिन जीडीपी ग्रोथ जो 1999-2000 में 6.44 फीसदी बढ़ी थी, उसकी रफ्तार 2000-01 में घटकर 4.35 फीसदी रह गई। हालांकि अगर लंबी अवधि के पैटर्न और आंकड़ों के आधार पर देखा जाए, तो एफडीआई और जीडीपी के सापेक्षिक संबंध को आराम से निर्धारित किया

एफडीआई बनाम एफआईआई

देश में विदेशी निवेश की चर्चा जब भी होती है, तो उसमें एफआईआई का नाम सबसे ऊपर आता है। एफआईआई (विदेशी संस्थागत निवेश) वह निवेश होता है, जो शेयर बाजार के जरिए कंपनियों की हिस्सेदारी खरीदने में किया जाता है। पूंजी बाजार नियामक सेबी से उपलब्ध आंकड़ों के मुताबिक साल 1992-93 से 30 अप्रैल 2014 तक भारतीय शेयर बाजारों में एफआईआई ने कुल 7.17 लाख करोड़ रुपये निवेश किए हैं, जबकि डेट फंडों में इनका निवेश 1.31 लाख करोड़ है। देश के विदेशी मुद्रा भंडार में योगदान में एफआईआई की भारी अहमियत होने के बावजूद इन्हें एफडीआई के मुकाबले कमतर दर्जे का निवेश माना जाता है क्योंकि इसमें देश की अर्थव्यवस्था

के प्रति निवेशक की कोई जवाबदेही नहीं होती। किसी भी बुरे समय में यह निवेश रातोंरात देश से बाहर जा सकता है और देश के अर्थतंत्र के सामने नई चुनौतियां खड़ी कर सकता है। इसलिए इसे हॉट मनी भी कहते हैं। दूसरी ओर एफडीआई वह निवेश होता है जो विदेशी कंपनियां या देश घरेलू उद्योगों के इंफ्रास्ट्रक्चर में करती हैं। इससे एक ओर जहां दीर्घकालिक पूंजी निर्माण (लॉन्ग टर्म कैपिटल फॉर्मेशन) होता है, वहीं उच्च तकनीक भी आती है। साथ ही, एफडीआई के रातोंरात उड़न-छू होने का जोखिम भी नहीं रहता। तकनीकी रूप से किसी घरेलू कंपनी में किसी विदेशी कंपनी द्वारा 10 फीसदी से ज्यादा निवेश किए जाने को एफडीआई की श्रेणी में रखा जाता है।

मजबूरी में हुई उदारीकरण की क्रांति

अस्सी के दशक के मध्य से भारत का भुगतान संतुलन लगातार बिगड़ने से दशक के आखिर तक देश का विदेशी मुद्रा भंडार खतरनाक स्तर तक कम हो गया। जून 1991 तक देश में केवल 60 करोड़ डॉलर का फॉरेक्स रिजर्व बचा था, जिससे भारत केवल तीन हफ्तों तक ही आयातित वस्तुओं का भुगतान कर सकता था। एक तरह से देश दिवालिया होने की कगार पर खड़ा था। ऐसे में अपनी अंतर्राष्ट्रीय देनदारी पर डिफॉल्ट से बचने के लिए भारत को तुरंत मदद की दरकार थी। आईएमएफ ने डिफॉल्ट से बचने के लिए जरूरी रकम देने के

बदले भारत से 67 टन सोना गिरवी रखने की मांग की। भारत ने बैंक ऑफ इंग्लैंड के पास 47 टन और यूनिन बैंक ऑफ स्विट्जरलैंड के पास 20 टन सोना गिरवी रखा। इससे देश को 60 करोड़ डॉलर का कर्ज मिला। इसके कुछ ही हफ्तों के बाद चंद्रशेखर सरकार गिर गई और आम चुनाव हुए जिसमें नरसिंह राव की अगुवाई में कांग्रेस पार्टी की सरकार बनी। सरकार बनने के लिए हफ्ते भर में नरसिंह राव ने देश को संबोधित किया और उसमें आर्थिक सुधारों की शुरुआत के संकेत दे दिए।

जा सकता है। “एफडीआई और जीडीपी के आपसी संबंध को समझने में जीडीपी पर एफडीआई का असर: भारत और चीन का तुलनात्मक अध्ययन” नाम से अग्रवाल और खान द्वारा अध्ययन काफी रोचक है। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि एफडीआई में 1 फीसदी बढ़ोतरी से चीन की जीडीपी 0.07 फीसदी बढ़ती है, जबकि भारत में यह वृद्धि 0.02 फीसदी होती है। साफ है कि विदेशी निवेश का भारत की जीडीपी पर चीन के मुकाबले कम असर होता है। ऐसा इसलिए कि भारत की अर्थव्यवस्था घरेलू उपभोग पर आधारित है, जिसमें कृषि का अहम योगदान है। एक अन्य शोध आलेख “क्या भारत को और बहुत ज्यादा एफडीआई की जरूरत है” में बालासुब्रह्मण्यम और सैप्सफोर्ड का निष्कर्ष है कि भारत को एफडीआई में मौजूदा स्तर से बहुत ज्यादा बढ़ोतरी की जरूरत नहीं है क्योंकि यहां मैन्युफैक्चरिंग और सर्विस सेक्टर का ढांचा और इनका समायोजन कुछ इस तरह है कि देश अपनी पूंजी जरूरतों के लिए अन्य स्रोतों पर भी निर्भर रह सकता है।

इन अन्य स्रोतों में सबसे अहम है घरेलू बचत। घरेलू बचत दो स्रोतों से आती है। पहला, एक आम आदमी अपनी कमाई का जो हिस्सा बचत के तौर पर बैंकों में रखता है और दूसरा, सरकारी और निजी कंपनियां अपनी बचत का जो हिस्सा नकद के तौर पर बैंकों में रखती हैं। यही पैसा बैंक उद्योगों को कर्ज के तौर पर देते हैं जिससे आर्थिक गतिविधियां तेज होती हैं। भारत में परिवार बचत का सबसे बड़ा स्रोत रहे हैं, उसके बाद निजी क्षेत्र का नंबर आता है और फिर बारी आती है सरकारी क्षेत्र की कंपनियों की लेकिन 2008 की मंदी के बाद इन दोनों ही तरह के स्रोतों पर गहरा आघात

लगा है। घरेलू बचत दर 2008 में जीडीपी का 38.1 फीसदी थी जो 2011-12 में 31.3 फीसदी और लगातार चौथे साल गिरकर 2012-13 में 30.1 फीसदी पर आ गई है। यह 9 वर्षों में सबसे कम बचत दर है। अगर इस गिरावट को अलग-अलग देखा जाए तो 2011-12 में हाउसहोल्ड सेविंग्स (यानी परिवारों द्वारा की जाने वाली बचत) 22.8 फीसदी थी जो 2012-13 में करीब एक फीसदी घटकर 21.9 फीसदी रह गई। इस दौरान निजी क्षेत्र की बचत दर 7.3 फीसदी से कम होकर 7.1 फीसदी पर आ गई जबकि सरकारी क्षेत्र की बचत दर 1.2 फीसदी

आंकड़े दिखाते हैं कि परिवार बचत के लिए फाइनेंशियल इंस्ट्रूमेंट्स की बजाए फिजिकल इंस्ट्रूमेंट्स (रियल एस्टेट और सोना) पर ज्यादा भरोसा कर रहे हैं। फाइनेंशियल और फिजिकल इंस्ट्रूमेंट्स में निवेश का अंतर 13 सालों के उच्चतम स्तर पर पहुंच गया है। फिजिकल इंस्ट्रूमेंट्स पर किया गया निवेश आर्थिक तंत्र से बाहर चला जाता है और इस तरह आर्थिक गतिविधियों को तेज करने में उसका योगदान नहीं रह जाता है।

पर स्थिर रही। हालांकि पिछले 9 वर्षों में अगर देखें तो सरकारी क्षेत्र की बचत दर 2004-05 के 2.3 फीसदी से आधी होकर 1.2 फीसदी रह गई है। यह बचत दर देश की आर्थिक शक्ति के लिए कितनी अहम है इसे केवल इस तथ्य भर से समझा जा सकता है कि जिस एफडीआई पर सरकारों और उद्योग जगत का इतना जोर होता है, वह आज भी जीडीपी के 2 फीसदी से कुछ ही ज्यादा है। घरेलू बचत में कमी तो एक पक्ष है, लेकिन इसका एक

और पक्ष भी चिंताजनक है। आंकड़े दिखाते हैं कि परिवार बचत के लिए फाइनेंशियल इंस्ट्रूमेंट्स की बजाए फिजिकल इंस्ट्रूमेंट्स (रियल एस्टेट और सोना) पर ज्यादा भरोसा कर रहे हैं। फाइनेंशियल और फिजिकल इंस्ट्रूमेंट्स में निवेश का अंतर 13 सालों के उच्चतम स्तर पर पहुंच गया है। फिजिकल इंस्ट्रूमेंट्स पर किया गया निवेश आर्थिक तंत्र से बाहर चला जाता है और इस तरह आर्थिक गतिविधियों को तेज करने में उसका योगदान नहीं रह जाता है। यह स्थिति बेहद खतरनाक है। सोने में निवेश को हतोत्साहित करने के लिए सरकार ने कई कदम उठाए हैं, जिनमें कस्टम ड्यूटी को कई चरणों में बढ़ाना और 80:20 का नियम सख्ती से लागू करना शामिल हैं। इन कदमों के सकारात्मक नतीजे भी दिखे हैं, लेकिन ताजा आंकड़े एक बार फिर सोने की खरीदारी में इजाफा होने के संकेत दे रहे हैं। अक्टूबर में देश में 4.18 अरब डॉलर के सोने का आयात हुआ जो कि पिछले साल अक्टूबर की तुलना में लगभग 4 गुना है। इस लेख के प्रिंट में जाने तक ऐसे तमाम संकेत मिल रहे हैं कि सरकार एक बार फिर सोने के आयात पर नकेल कसने के लिए कुछ अतिरिक्त कदम उठा सकती है। जीडीपी वृद्धि दर को एक बार फिर दहाई अंकों में ले जाने के लिए घरेलू बचत दर को वापस पहले के स्तरों पर ले जाने के लिए गंभीरता से विचार किए जाने की जरूरत है।

संदर्भ

अग्रवाल, गौरव एवं खान, आमिर (2011) इंटरनेशनल जर्नल ऑफ बिजनेस मैनेजमेंट, www.ccsnet.org/ijbm
बालासुब्रह्मण्यम, वीएन तथा सैप्सफोर्ड, डेविड, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, वर्ष 42, अंक 17, अप्रैल 2007